खण्ड – 5 : आधुनिक समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ

इकाई – 1 : संरचनावाद

इकाई की रूपरेखा

5.1.0. उद्देश्य
5.1.1. प्रस्तावना
5.1.2. संरचनावाद का अर्थ और परिभाषा
5.1.3. संरचनावाद का उद्भव और विकास
    5.1.3.1. फर्दीनांद द सॉस्सुर
        5.1.3.1.1. आधुनिक भाषा विज्ञान और सॉस्सुर
        5.1.3.1.2. भाषा का संरचनात्मक विवेचन
    5.1.3.2. प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल
        5.1.3.2.1. 'सेमिऑटिक्स' (संकेत-विज्ञान) और फ़ोनेमिक्स (ध्वनि-विज्ञान)
        5.1.3.2.2. भाषिकी और काव्यशास्त्र
    5.1.3.3. रोमन याकॉब्सन
        5.1.3.3.1. प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल और रोमन याकॉब्सन
        5.1.3.3.2. रोमन याकॉब्सन का भाषिक सिद्धान्त
    5.1.3.4. क्लॉद लेवी-स्ट्रॉस
        5.1.3.4.1. संरचनात्मक नृतत्त्वविज्ञान
        5.1.3.4.2. 'मिथक' औए 'मिथीम्स'
5.1.4. संरचनावाद की प्रमुख अवधारणाएँ
    5.1.4.1. 'बाइनरि ऑपोज़िशन' (युग्मक विरोध)
    5.1.4.2 . 'लाँग' (भाषा) और 'परोल' (वाक्)
    5.1.4.3. 'डायक्रोनिक' (ऐतिहासिक) और 'सिंक्रोनिक' (समकालिक)
    5.1.4.4. 'सिग्निफ़ायर' (संकेतक) और 'सिग्निफ़ाइड' (संकेतित)
5.1.5. साहित्यिक संरचनावाद
5.1.6. आख्यान का काव्यशास्त्र
5.1.7. पाठ का सारांश
5.1.8. उपयोगी सन्दर्भ
    5.1.8.1. हिन्दी की पुस्तकें
    5.1.8.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें
    5.1.8.3. इन्टरनेट स्रोत
5.1.9. अभ्यास के लिए प्रश्न

5.1.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

5.1.0.1. संरचनावाद के अर्थ और स्वरूप को समझ सकेंगे।

5.1.0.2. भाषा विज्ञान और संरचनावाद के विकास की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

5.1.0.3. प्रमुख संरचनावादी चिन्तकों के सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे।

5.1.0.4. साहित्यिक संरचनावाद की मुख्य स्थापनाओं को समझ सकेंगे।

5.1.1. प्रस्तावना

पिछले खण्ड - 4 के पाठों में आपने पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों – स्वच्छंदतावाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद और रूपवाद का अध्ययन किया। आपने देखा कि साहित्य-सृजन और साहित्य-समीक्षा दोनों क्षेत्रों में इन सिद्धान्तों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। खण्ड - 5 में भी आप पाश्चात्य काव्यशास्त्र के क्रम में आधुनिक समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों और सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे।

प्रस्तुत इकाई में हम भाषा विज्ञान के सन्दर्भ में साहित्य को समझने का प्रयास करेंगे। नृतत्त्वशास्त्र के अनन्तर विकसित सिद्धान्त 'संरचनावाद' शुद्ध साहित्यिक सिद्धान्त नहीं है, इसका सम्बन्ध मनोविज्ञान, गणित, समाजशास्त्र आदि अनेक अनुशासनों से है, लेकिन भाषा-विज्ञान का मुख्य सिद्धान्त बन जाने से यह साहित्य-अध्ययन का भी अनिवार्य सिद्धान्त है। हम देखेंगे कि संरचनावाद किस प्रकार भाषा और साहित्य की समस्याओं के निराकरण में सहायक हुआ है।

5.1.2. संरचनावाद का अर्थ और परिभाषा

'संरचना' का अर्थ किसी वस्तु या घटना की बनावट से लिया जाता है। यह विषय के विभिन्न घटकों की समग्रता को प्रकट करने वाला सम्प्रत्यय है। जब हम एक 'पूर्ण' वस्तु, विषय या घटना की बात करते हैं तो हम उसके 'परस्पर सम्बन्धित तत्त्वों' की एकता या बनावट की बात करते हैं। अर्थात् 'संरचना' में उसके सभी तत्त्व आपस में जुड़े हुए होते हैं और मिलकर एक 'पूर्ण' वस्तु या घटना का निर्माण करते हैं। अत: संरचना का अर्थ हुआ वस्तु के विभिन्न अवयवों में समन्वय या तालमेल। संरचना के इस अर्थ को आधार बनाकर किसी विषय के अध्ययन की विधि 'संरचनावाद' कहलाती है। कैम्ब्रिज एड्वान्स्ड लर्नर्स डिक्शनरी ऑफ़ इंग्लिश के अनुसार संरचनावाद "भाषा, साहित्य, कला, नृतत्त्वशास्त्र और समाजशास्त्र में प्रयुक्त विचारों की एक ऐसी व्यवस्था है जो विषय-विशेष की मूल संरचना और सम्बन्धों पर बल देती है।"

संरचनावाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु एक संरचना होती है। संरचना में ही उसका अर्थ निहित होता है।

संरचनावाद का प्रस्थान-बिन्दु यह विचार है कि सांस्कृतिक गतिविधियों का अध्ययन और विश्लेषण एक विज्ञान की तरह वस्तुनिष्ठ ढंग से किया जा सकता है। यह क्षेत्र विशेष के उन तत्त्वों की खोज करता है जिनसे उसका गठन होता है। तत्त्वों का पता चल जाने के बाद उनके सम्बन्धों के संजाल को समझने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत समस्त सम्बन्धों का निर्माण करने वाली संरचना को उस सांस्कृतिक घटना का आधारभूत कारण माना जाता है। माना जाता है कि एक बार इस संरचना का पता लग जाने पर उस क्षेत्र की सभी गतिविधियों की व्याख्या की जा सकती है। इस आलोचना-विधि के नामकरण का श्रेय रोमन याकॉब्सन को है।

संरचनावाद शब्द का प्रयोग विभिन्न अनुशासनों में इस अर्थ में किया जाता है कि अवधारणाओं का संरचनात्मक सम्बन्ध अलग-अलग संस्कृतियों और भाषाओं में अलग-अलग होता है। इन सम्बन्धों को उपयुक्त ढंग से उद्घाटित किया जा सकता है और उनका उपयोग किया जा सकता है। इसे यों समझें कि संरचनावाद एक ऐसा उपागम या विधि है जिसके अन्तर्गत भाषा-विज्ञान, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, समाज शास्त्र और गणित आदि विभिन्न क्षेत्रों में उन मूलभूत सिद्धान्तों का अन्वेषण किया जाता है जिन पर उच्चतर मानसिक, भाषायी, सामाजिक या सांस्कृतिक संरचनाओं और संरचनम्तंत्र का निर्माण होता है। संरचनावाद की आधारशिला यह विचार है कि यह दुनिया और इसकी सभी इकाइयाँ सम्बन्धों के ताने-बाने से आपस में बंधे हुए हैं। सम्बन्धों के इस तंत्र से बाहर किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। हमें वस्तुओं का अवबोध तभी होता है जब हम उन्हें इस सम्बन्ध-तंत्र अर्थात् उनकी संरचना के रूप में देखते हैं। वस्तुत: मानव-मस्तिष्क 'संरचना' की प्रक्रिया के तहत ही कार्य करता है।

5.1.3. संरचनावाद का उद्भव और विकास

संरचनावाद का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी में हुआ था और बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में यह बौद्धिक हलक़ों में फिर प्रकट हुआ। कुछ दशकों तक भाषा, साहित्य, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में संरचनावाद प्रभावशाली और बहुत चर्चित विधि रही। बीसवीं सदी का संरचनावाद फर्दीनांद द सॉस्सुर के भाषाविज्ञान की प्रेरणा से शुरू हुआ तथा अमेरिकी-स्लाविकी भाषा वैज्ञानिक रोमन याकॉब्सन और फ्रांसीसी मानवशास्त्री क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस के लेखन में इसे नई ऊर्जा मिली।

5.1.3.1. फर्दीनांद द सॉस्सुर

कलाकृति में उसकी संरचना का विवेचन पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अरस्तू के समय से ही होता आया है। आधुनिक भाषा विज्ञान और संरचनावाद के पितामह फर्दीनांद द सॉस्सुर(1857-1913) स्विट्ज़रलैंड के भाषा-वैज्ञानिक थे। सॉस्सुर के लिखे लेखों और जिनेवा विश्वविद्यालय में 1906-1911 तक दिए गए व्याख्यानों के आधार पर उसके मित्रों एवं सहयोगियों ने उसके भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया और 1916 में 'सामान्य भाषाविज्ञान का पाठ्यक्रम' शीर्षक से एक पुस्तक का प्रकाशन किया। बौद्धिक-जगत् में इन विचारों का सार्थक प्रभाव 1950 के बाद ही दिखाई दिया। मूल फ़्रांसीसी भाषा में प्रकाशित सॉस्सुर की पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवाद बहुत समय बाद1959 में प्रकाशित हुआ। भाषा वैज्ञानिक रोमन याकॉब्सन, नृतत्त्व विज्ञानी

क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस और संस्कृति के अध्येता रोलाँ बार्थ सॉस्सुर के भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों से प्रभावित होने वालों में प्रमुख थे । देरिदा की साहित्यिक-दार्शनिक धारणाओं, लुई अल्थुसे जैसे संरचनावादी-मार्क्सवादी की 'विचारधारा' के विश्लेषण, ज्यॉक़ लकाँ के मनोविश्लेषण-सिद्धान्तों और स्त्रीवादी जूलिया क्रिस्तोवा के भाषा-विवेचन में सॉस्सुर के विचार किसी न किसी रंग-रूप में उपस्थित हैं।

5.1.3.1.1. आधुनिक भाषा विज्ञान और सॉस्सुर

सॉस्सुर ने मानवीय भाषा के अध्ययन को पूर्ण रूप से एक नया मोड़ दिया, इसलिए उसे आधुनिक भाषाविज्ञान का जनक कहा जाता है । सॉस्सुर ने तर्क देकर सिद्ध किया कि भाषा का अध्ययन केवल उसके अवयवों के सन्दर्भ में या केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसका अध्ययन उसके विभिन्न अवयवों को जोड़ने और उसे अभिव्यक्त करने वाले सम्बन्धों की एक व्यवस्था के रूप में किया जाना चाहिए। इससे पहले भाषाविज्ञान के अन्तर्गत समय के साथ भाषा में आए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता था और इन परिवर्तनों को भाषावैज्ञानिक तथा ग़ैर-भाषावैज्ञानिक कारकों के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर विश्लेषित किया जाता था । इन परिवर्तनों की पहचान कुछ व्यक्तियों या समूहों की वास्तविक अभिव्यक्ति के आधार पर की जाती थी, अर्थात् किसी शब्द के अर्थ के उद्भव का अध्ययन विशेष उक्तियों के आधार पर किया जाता था और उसमें आए परिवर्तनों को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारकों से जोड़ दिया जाता था।

5.1.3.1.2. भाषा का संरचनात्मक विवेचन

सॉस्सुर ने माना है कि भाषा बहुत जटिल होती है। उसका एक पक्ष वैयक्तिक और दूसरा सामाजिक होता है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा की उपस्थिति पहले से होती ही है, उसका निरन्तर विकास भी होता रहता है। वह सदैव अतीत की उपज और वर्तमान की व्यवस्था होती है।

सॉस्सुर ने 'भाषा' अर्थात् मनुष्य द्वारा संकेतों के माध्यम से संचार की क्षमता और 'भाषा-व्यवस्था' (लाँग) में भेद किया है। ये दोनों भी व्यक्तिगत उक्तियों के दृष्टान्त 'वाक्' (परोल) से अलग होती हैं। सॉस्सुर का भाषाविज्ञान 'लाँग' और 'परोल' के भेद के आधार पर खड़ा है। सॉस्सुर के अनुसार यह भेद ही हमें सामाजिक और व्यक्तिगत तथा ज़रूरी एवं आकस्मिक या आनुषंगिक में भेद करने की क्षमता प्रदान करता है। 'लाँग' व्यक्ति से अलग एक व्यवस्था है जो बिना किसी योजना और लक्ष्य के चुपचाप प्रकट होती है। 'लाँग' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह 'अवधारणाओं के भेदों की शृंखला' से सुमेलित 'स्वरों के भेदों की शृंखला' है । एक संस्था के रूप में भाषा का प्रकार्य इन भेदों की शृंखलाओं की समान्तरता बनाए रखना है। इसके विपरीत, 'परोल' इच्छा और बुद्धि का व्यक्तिगत कार्य है। यह लोग जो कुछ भी बोलते हैं उसका कुल योग है, जिसमें व्यक्तिगत शब्दों और स्वर-क्रियाओं का मेल होता है।

सॉस्सुर के अनुसार भाषा के सामाजिक तत्त्व अर्थात् संकेत-निर्मात्री प्रक्रियाएँ 'सेमिऑलॉजी' (संकेत-विज्ञान) का क्षेत्र हैं और 'संकेत-विज्ञान' सामाजिक जीवन के अंग के रूप में संकेतों का अध्ययन करता है।

संकेत सीधे-सीधे शब्द और वस्तु के बीच सम्बन्ध को इंगित नहीं करता है, बल्कि यह मनुष्य के मस्तिष्क में उपस्थित अवधारणाओं और उसके बाद आने वाली ध्वनि-संरचना की जटिल एकता है। ध्वनि-संरचना केवल अवधारणाओं का उच्चारण नहीं है, यह श्रोता को उसकी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा दिया गया ध्वनि का मनोवैज्ञानिक संस्कार है। सॉस्सुर ध्वनि-संरचना को 'संकेतक' और अवधारणा को 'संकेतित' कहता है। इन दोनों के सम्मिश्रण को 'संकेत' कहा गया है।

सॉस्सुर ने कहा कि भाषिक संरचना के सांगठनिक स्तर को अलग करने का एक ही तरीक़ा है कि उसके परिवर्तन की धारा (इतिहास) को मोड़ दिया जाए और इसके जटिल काल्पनिक प्रकार्यों से भी ध्यान हटा दिया जाए। पूरा ध्यान समकालिक (सिंक्रोनिक) पक्षों पर केन्द्रित कर दिया जाए। यह (सिंक्रोनिक) एक ऐसी सार्थक व्यवस्था है जो प्रत्येक छोटी से छोटी भावोक्ति को मान्यता और महत्त्व देती है। सॉस्सुर ने सभी सामाजिक-ऐतिहासिक सन्दर्भों से विच्छिन्न एक ऐसे भेदपरक संकेत-तंत्र के रूप में भाषाविज्ञान का प्रस्ताव किया जिसमें कोई निश्चित और स्पष्ट अर्थ ही न हो। संकेतों के अध्ययन के विज्ञान को उसने 'सेमिऑलॉजी' (संकेत-विज्ञान) कहा और दावा किया कि उसकी भाषा-वैज्ञानिक खोजें संकेत-विज्ञान का विकास करेंगी और सामाजिक संचार के सभी क्षेत्रों में अन्तर्निहित व्यवस्था को उद्घाटित करेंगी।

इस प्रकार भाषा को संकेतों की एक ऐसी व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित किया गया, जिसमें प्रत्येक संकेत का अर्थ दूसरे से उसकी भिन्नता के आधार पर निर्धारित होता है। भाषा की इस दृष्टि ने उस सामान्य विश्वास को चुनौती दी कि शब्दों का उनके नामवाली चीज़ों के साथ सीधा और स्थाई सम्बन्ध होता है। शब्दों और गोचर जगत् के इस विच्छेदीकरण ने साहित्यिक रचनाओं के विवेचन के ढंग में परिवर्तन को प्रेरित किया ।

सॉस्सुर द्वारा प्रस्तुत भाषा का संरचनात्मक विवेचन उन स्थितियों का परीक्षण करता है जिनमें भाषा और उसका अर्थ कार्य करते हैं। वह यह पता लगाने का प्रयास करता है कि शब्दों में अर्थ कैसे भरे जाते हैं। सॉस्सुर को आशा थी कि उसका भाषा वौज्ञानिक सिद्धान्त अन्य सामाजिक और सांस्कृतिक परिघटनाओं पर भी लागू किया जा सकेगा। 'संकेत-विज्ञान' के नाम से एक अकादमिक अनुशासन की शुरुआत स्वयं सॉस्सुर ने कर दी थी, जिसमें उसके अनुसार समाज में संकेतों के जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाएगा। सॉस्सुर के भाषा विज्ञान का सार यह है कि भाषा में केवल भिन्नताएँ होती हैं। सामान्य रूप में भिन्नतापूर्ण चीज़ों के बीच भिन्नता सकारात्मक अर्थ का संकेत देती है; लेकिन भाषा में बिना सकारात्मक अर्थ के केवल भिन्नताएँ ही होती हैं। भाषा में भाषिक व्यवस्था से पहले न तो विचार होते हैं और न ही ध्वनियाँ।

5.1.3.2. प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल

प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल अथवा प्राग स्कूल की स्थापना 1926 में भाषा-विज्ञान में नए सिद्धान्तों की खोज के उद्देश्य से की गई थी। इस समूह में चेक, रूसी, उक्रेनी और जर्मन विद्वान शामिल थे। इन विद्वानों ने भाषा-विज्ञान के अतिरिक्त सौन्दर्यशास्त्र, संगीत विद्या और नृजाति विज्ञान के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। इसके

प्रभावशाली सदस्यों में रोमन याकॉब्सन, विलेम मेथेसियस, निकोलाई त्रुबेत्ज़्कोय, सर्जेई कारस्वेस्की और चेक साहित्यविद् रेने वेलेक के नाम प्रमुख हैं। इस स्कूल के कार्यों में रूपवाद का आधुनिक संरचनावाद में संक्रमण होता है। रोमन याकॉब्सन के साथ जाँ मुकारोव्स्की, फ़ेलिक्स वेदिअका आदि ने रूपवादी अवधारणाओं का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया, लेकिन ऐसा उन्होंने इन अवधारणाओं को सॉस्सुर के भाषा वैज्ञानिक ढाँचे में व्यवस्थित करते हुए किया।

5.1.3.2.1. 'सेमिऑटिक्स' (संकेत-विज्ञान) और फ़ोनेमिक्स (ध्वनि-विज्ञान)

प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल के कार्यों में 'संरचनावाद' का विलय 'सेमिऑटिक्स' (संकेत-विज्ञान) में हो जाता है। संकेत विज्ञान का अर्थ 'संकेतों' का व्यवस्थित अध्ययन होता है और साहित्यिक संरचनावादी यही कर रहे थे। 'संरचनावाद' शब्द से यही प्रतीत होता है कि इस विधि को साहित्य के अलावा भी अनेक विषयों पर लागू किया जा सकता है (नृतत्त्वशास्त्र, मनोविज्ञान ,समाज शास्त्र, गणित और अर्थशास्त्र आदि में इसे विधिवत लागू किया गया था)। इसके विपरीत 'संकेत-विज्ञान' यह दर्शाता है कि यह अध्ययन के किसी विशेष क्षेत्र या व्यवस्था पर लागू होगा, जिन्हें सामान्य रूप से 'संकेत' कहा जाता है जैसे ट्रैफ़िक व्यवस्था, कविता, प्रोटोकॉल आदि। संरचनावाद उसे भी अपने विचार का विषय बनाता है जिसे वह संकेतों की व्यवस्था की तरह नहीं देखता है, जबकि वास्तव में वह संकेतों की व्यवस्था ही होती है। संकेत-विज्ञान सामान्य रूप से संरचनवादी उपागमों का ही प्रयोग करता है। इस बिन्दु पर दोनों उपागम एक दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण करते हैं।

प्राग स्कूल के संरचनावाद की मुख्य देन फ़ोनेमिक्स (स्वनिमी या ध्वनि विज्ञान) है। इसके अन्तर्गत उन्होंने भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों की सूची बनाने या उनका क्रम निर्धारित करने के स्थान पर उनके पारस्परिक सम्बन्धों को समझने में अधिक रुचि दिखाई। उन्होंने दिखाया कि भाषा में ध्वनियों को विरोधों की शृंखला के रूप में अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। अंग्रेज़ी ध्वनियाँ p और b अलग-अलग स्वनिम का प्रतिनिधित्व करती हैं, क्योंकि दो स्वनिमों के बीच का विरोध ही दो अलग-अलग शब्दों (pat और bat) का अन्तर है। ध्वनियों का विरोधी स्वरूप में विश्लेषण करने से भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन में भी सहायता मिली है।

5.1.3.2.2. भाषिकी और काव्यशास्त्र

प्राग संरचनावाद बीसवीं सदी के सैद्धान्तिक चिन्तन की मुख्यधारा के विकास की अनिवार्य कड़ी थी। यह भाषिकी और काव्यशास्त्र के उत्तर-प्रत्यक्षवादी रुझानों का मंच था, जिसकी शुरुआत सॉस्सुर और रूसी रूपवादियों ने की थी। प्राग संप्रदाय के आलोचकों ने परम्परागत साहित्यिक अध्ययन के सरोकारों को जो नए सैद्धान्तिक आधार प्रदान किए वे इस प्रकार हैं :

- साहित्य के अध्ययन में आधुनिक वैज्ञानिक विचारों के अनुसार संरचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया। इसके मुख्य सिद्धान्त 1929 में याकॉब्सन के अपने एक लेख में प्रस्तुत किए। यहीं 'संरचनावाद' शब्द का निर्माण भी हुआ। उसने लिखा कि "यदि हमें वर्तमान समय के अत्यधिक विविधापूर्ण वैज्ञानिक

आविष्कारों का सारांश प्रस्तुत करना हो तो हमें 'संरचनावाद' से अधिक उपयुक्त नाम नहीं मिलता। इसमें समकालीन विज्ञान द्वारा परखी गई किसी भी परिघटना को यांत्रिक संकलन की तरह नहीं, बल्कि एक संरचनात्मक सम्पूर्णता की तरह देखा जाता है, और मुख्य कार्य इस व्यवस्था के आन्तरिक नियमों, चाहे स्थिर हो या प्रगतिशील, का उद्घाटन करना है।"

- प्राग स्कूल में साहित्यिक आलोचना और भाषिकी के बीच मज़बूत सम्बन्ध थे। सभी भाषा वैज्ञानिक साहित्य अध्ययन में भी दख़ल रखते थे तथा साहित्यिक आलोचक भाषा विज्ञान को महत्त्वपूर्ण अनुशासन मानते थे। प्राग स्कूल में साहित्य और काव्यभाषा के समन्वित अध्ययन ने भाषा विज्ञान के क्षेत्र में ध्वनि विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रतिपादन जैसे आधारभूत कार्यों की शुरुआत की।
- साहित्य के अध्ययन के अन्तर्गत सार्वभौमिक विशेषताओं से पूर्ण सामान्य काव्यशास्त्र और किसी विशेष साहित्यिक रचना पर केन्द्रित आलोचनात्मक काव्यशास्त्र को मिला दिया गया।
- प्राग स्कूल की ज्ञान मीमांसा में आम पाठक और साहित्य के निष्णात विद्यार्थी में मौलिक अन्तर माना गया। याकॉब्सन के अनुसार एक कविता, एक संगीत रचना की तरह, साधारण पाठक में कलात्मक अवबोध की सम्भावना देखती है, लेकिन उसमें वैज्ञानिक विश्लेषण को प्रभावित करने की आवश्यकता या योग्यता नहीं पैदा करती। लेकिन प्राग स्कूल के विद्वान जानते थे कि मानवीय संचार का विद्यार्थी सिग्नल-एंजीनियर से बढ़कर होता है, क्योंकि उसे शब्दार्थों और सांस्कृतिक प्रघटनाओं व प्रक्रियाओं को समझना पड़ता है। उसका ज्ञानात्मक दृष्टिकोण निश्चित नहीं होता, बल्कि खोज के उद्देश्य और स्वरूप के अनुसार बदलता रहता है। यह परिवर्तनीयता मानवीय संचार के विद्यार्थी को एक प्रभावी ज्ञानात्मक छूट प्रदान करती है – वह गूढ़ार्थ विशेषज्ञ की तरह वह कृति से कूट की तरफ़ बढ़ता है तथा एक सजग प्रतिभागी के रूप में वह कूट के माध्यम से कृति को समझने में सक्षम होता है।

प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल अपने भीतरी मतभेदों के बावजूद साहित्य और साहित्यिक आलोचना में रूसी रूपवाद की अपेक्षा अधिक समरूपता वाला समूह था। इस सम्बन्ध में याकॉब्सन ने लिखा है कि "उन आवेगपूर्ण और प्रेरक विचार-विमर्श को याद करते हुए, कि जिसने हमारे वैज्ञानिक विचारों को कसौटी पर परखा, उद्दीप्त किया और धार दी, मैं स्वीकार करता हूँ कि कहीं भी और कभी भी मुझे ऐसी रचनात्मक ऊर्जायुक्त विद्वतापूर्ण बहस देखने को नहीं मिली।"

5.1.3.3. रोमन याकॉब्सन

रोमन याकॉब्सन (1896-1982) को अमेरिकी और स्लाविक भाषाविज्ञान का पुरोधा माना जाता है। रूसी रूपवाद सॉस्सुर के भाषावैज्ञानिक विचारों से बहुत प्रभावित था। रूपवाद में संरचनावाद के अस्पष्ट रुझान ही प्रकट हुए थे, वह संरचनावाद से अलग प्रवृत्ति थी। रूपवाद जिस एक चिन्तक में संरचनावाद के सर्वाधिक क़रीब था, उसका नाम रोमन याकॉब्सन था। याकॉब्सन मॉस्को लिंग्विस्टिक सर्कल का मुख्य विचारक था। उसने मॉस्को से प्राग में आकर 1926 में 'प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल' का गठन किया और 'चेक संरचनावाद' का

संस्थापक बना। यहाँ से अमेरिका चले जाने के बाद रोमन याकॉब्सन नृतत्त्वशास्त्री क्लॉद लेवी-स्ट्रॉस के सम्पर्क में आया। आधुनिक भाषाविज्ञान इन दोनों विद्वानों के वैचारिक संवाद का ऋणी है। रूपवाद, संरचनावाद और आधुनिक भाषा विज्ञान पर याकॉब्सन का प्रभाव स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है। याकॉब्सन ने भाषा विज्ञान के अंग के रूप में काव्यशास्त्र पर विशेष अध्ययन किया है। उसके अनुसार भाषा का काव्यात्मक प्रकार्य संकेतों की सुस्पष्टता को प्रोत्साहित करता है तथा यह उनका सम्प्रेषण में प्रतिवादी के रूप में प्रयोग करने के स्थान पर उनके गुणों की तरफ ध्यान आकर्षित करता है।

5.1.3.3.1. प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल और रोमन याकॉब्सन

प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल के अपने साथियों के साथ 1928 में याकॉब्सन ने सॉस्सुर के संरचनावाद से अपने मतभेद उजागर कर दिए। याकॉब्सन के विचार 'प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल' के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल' में भाषा को ऐतिहासिक और समकालिक दोनों की संरचना माना गया है। याकॉब्सन ने कहा कि उसकी अनुसंधान विधियों का प्रयोग उच्चरित ध्वनियों के प्रकार्यों का अध्ययन ऐतिहासिक (डायक्रोनिक) रूप से भाषा के परिवर्तनों को समझने के लिए तथा सिंक्रोनिक (समकालिक) रूप से भाषा के स्वरूप और संरचना को समझने के लिए किया जा सकता है। याकॉब्सन ने अलग से चीज़ों का अध्ययन करने के स्थान पर सम्बन्धों की व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए सांस्कृतिक रूप से परस्पर सम्बन्धित संकेतों का प्रयोग किया। मुख्य ज़ोर समग्र व्यवस्था पर था, जिसे 'उसके अंशों के कुल योग से अधिक' माना गया है। याकॉब्सन के विचार से भाषा का विश्लेषण उसके सभी सम्भव प्रकार्यों के साथ किया जाना चाहिए। उसके साहित्यिक या काव्यात्मक प्रकार्य की चर्चा करने से पहले अन्य प्रकार्यों में उसकी स्थिति का पता कर लेना चाहिए। याकॉब्सन ने भाषा को संस्कृति की अभिव्यक्ति और विकास का माध्यम मान कर उसका अध्ययन किया। प्राग स्कूल व्यापक अर्थ में प्रकार्यवाद और संरचनावाद का समन्वय करता है। भाषा का प्रत्येक अवयव, जैसे फ़ोनीम, मॉरफ़ीन, शब्द, वाक्य आदि, एक विशेष प्रकार्य की पूर्ति करता है तथा भाषा में केवल अवयव ही नहीं परिस्थिति और प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। भाषा उपसंरचनाओं की संरचना है। प्रत्येक उपसंरचना का अपना महत्त्व है परन्तु उन्हें एकदम विच्छिन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि वे एक व्यापक सम्पूर्णता का हिस्सा हैं। उसके अनुसार संरचनावादियों का कार्य व्यवस्था की सतह के नीचे मौजूद गहरी संरचनाओं का व्यवस्थित अनुसंधान करना है।

5.1.3.3.2. रोमन याकॉब्सन का भाषिक सिद्धान्त

याकॉब्सन का भाषिक सिद्धान्त सॉस्सुर के संरचनावाद और रूसी रूपवाद के आधारों पर विकसित हुआ है। सॉस्सुर के अनेक विचारों को ग्रहण करते हुए भी याकॉब्सन ने सॉस्सुरद्वारा 'लाँग' (भाषा) को 'परोल' (वाक्) से अधिक महत्त्व दिए जाने के विचार को अस्वीकार कर दिया। उसका ज़ोर 'परोल' के विश्लेषण पर था। इसमें विमर्श में प्रयुक्त भाषिकी संकेत की महत्त्वपूर्ण ध्वनिक इकाई 'फ़ोनीम' (स्वनिम) का अन्वेषण शामिल है। याकॉब्सन ने अपने भाषिकी सम्बन्धी विचारों को सुगठित सिद्धान्त का रूप देने के लिए अमेरिकी संकेत-वैज्ञानिक

सी.एस. पियर्स के विचारों से भी लाभ उठाया। पियर्स द्वारा भाषिकी संकेतों के विभाजन– आइकॉन (अनुप्रतीक), इंडेक्स (अभिसूचक) और सिंबल (प्रतीक) – से याकॉब्सन को संकेतीकरण की प्रक्रिया में अन्तर्निहित सम्बन्धों को समझने में सहायता मिली। याकॉब्सन ने सॉस्सुर द्वारा अपने सिद्धान्त में प्रयुक्त 'मेटाफ़र' (रूपक) और 'मेटॉनिमी' (प्रतिस्थानिक रूपक) में भेद को स्पष्ट किया। याकॉब्सन ने पाया कि ये दोनों तत्त्व साहित्यिक कार्य में 'बाइनरी ऑपोज़िशन' (युग्मक विरोध) के रूप में होते हैं। याकॉब्सन ने इन दो मुख्य आधारों पर अपने साहित्य-सिद्धान्त विकसित किए जो संरचनावादी साहित्य-चिन्तन के आधारभूत सिद्धान्त हैं। उसने अपनी संरचनात्मक भाषिकी का उपयोग साहित्यिक कृति की संरचना में अन्तर्भूत अर्थगत और स्वनिमिक संगतियों को पहचानने में किया और पाया कि सभी कृतियों की संरचना इसी आधार पर हुई है।

5.1.3.4. क्लॉद लेवी-स्ट्रॉस

जब याकॉब्सन अपने भाषा और साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहा था, उन्हीं दिनों फ़्रांसीसी नृतत्त्व-वैज्ञानिक क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस (1908-2009) भी ऐसे ही उपागम द्वारा कृति के अर्थ को समझने में लगा हुआ था। याकॉब्सन के साथ उसकी मित्रता उसके सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सहायक हुई।

5.1.3.4.1. संरचनात्मक नृतत्त्वविज्ञान

क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस फ़्रांसीसी नृतत्त्व-वैज्ञानिक था। उसने मानव-समाज और संस्कृति के अध्ययन के द्वारा संरचनात्मक नृतत्त्व-विज्ञान का विकास किया। उसने अपनी अनुसंधान विधियों को नातेदारी व्यवस्था और पौराणिक मिथकीय संरचनाओं सहित अनेक सांस्कृतिक संरचनाओं के विश्लेषण में लागू किया। याकॉब्सन के समान संरचनावादी दृष्टि से लेवि-स्ट्रॉस ने अमेरिका के विभिन्न आदिम समाजों में प्रचलित मिथकों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया। उसने देखा कि इन मिथकों में ऐसी समरूप संरचना है जो संयोग मात्र नहीं हो सकती। उसने इस संरचना के अध्ययन के आधार पर मिथकीय आशयों की उत्पत्ति का एक सुसंगत सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसके अनुसार उसने जिन मिथकीय कथामालाओं का विश्लेषण किया उन सभी में एक आधारभूत अर्थ पाया गया है। यह अर्थ भारतीय मिथकों में मौजूद मूल आख्यानिक संरचना पर आधारित था। उसने देखा कि यह संरचना सॉस्सुर के 'युग्मक विरोध' की तरह गठित थी। लेवि-स्ट्रॉस ने विचार प्रकट किया कि ये संरचनाएँ अन्ततः मानव-मस्तिष्क की संरचना में निहित हैं, जो कि मस्तिष्क की जैविकी और स्नायु-तंत्र पर आधारित है।

लेवि-स्ट्रॉस ने संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिक सॉस्सुर के सिद्धान्तों को नृतत्त्वविज्ञान में लागू किया और उन्हें विकसित किया। अपने शोधग्रन्थ 'संरचनात्मक नृतत्त्वविज्ञान' में लेवि-स्ट्रॉस संस्कृति को सांकेतिक संचार की व्यवस्था मानता है, जिसका अनुसंधान उन विधियों से किया जा सकता है जिसे अन्य लोगों ने उपन्यासों, राजनीतिक भाषणों, खेलों और फ़िल्मों की चर्चा में बहुत संकीर्ण अर्थों में किया है। लेवि-स्ट्रॉस का मूल तर्क यह था कि 'असभ्य' मस्तिष्क की संरचना वैसी ही होती है जैसी कि 'सभ्य' मनुष्य के मस्तिष्क की होती है। मस्तिष्क और मनुष्य की विशेषताएँ सर्वत्र एक जैसी हैं।

5.1.3.4.2. 'मिथक' औए 'मिथीम्स'

लेवि-स्ट्रॉस ने संरचनावादी दृष्टि से मिथकों की व्याख्या की है। उसके अनुसार मिथक भाषा का विशेष रूप और प्रयोग है। उसने दिखाया है कि मिथकीय शृंखला से ली गई एक कहानी (परोल) में कोई अलग और अन्तर्निहित अर्थ नहीं होता है, लेकिन पूरी मिथकीय शृंखला (लाँग) में उसकी स्थिति तथा उस शृंखला की अन्य कहानियों से उसकी समानता या अन्तर को देखकर उसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। लेवि-स्ट्रॉस के अनुसार मिथक की संरचना मानव-मस्तिष्क की संरचना की तरह होती है, अर्थात् यह मनुष्यों के चिन्तन के ढंग को इंगित करती है। इस प्रकार मिथक एक भाषा बन जाता है। वह भाषा के रूप में एक ऐसा सार्वभौमिक कथा-माध्यम बन जाता है जो देश-काल से परे जाकर सभी के लिए समान रूप से उनके अनुभवों और भावनाओं की अभिव्यक्ति का ख़ज़ाना होता है।

लेवि-स्ट्रॉस 'परोल' और 'लाँग' के अतिरिक्त एक तीसरे संदर्भित तत्त्व 'मिथीम्स' (मिथकों की इकाइयाँ, जैसे भाषिकी में स्वनिम आदि होते हैं) का प्रयोग करता है जो पहले दोनों तत्त्वों के गुणों को मिलाते हैं। इन मिथीम्स के संरचनात्मक प्रतिरूप मिथक में अर्थ भरते हैं। मिथक बहुत पुरानी घटनाओं की जानकारी देते हैं, लेकिन इनमें जिस तरह की संरचना दिखाई जाती है वह कालातीत होती है। यह संरचना भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की व्याख्या करने में सक्षम होती है। लेवि-स्ट्रॉस ने यह देखा कि वर्तमान समाजों में मिथक की भूमिका राजनीति निभा रही है। जैसे फ्रांसीसी क्रान्ति भूतकाल की घटना है, लेकिन वह समकालीन फ्रांस की सामाजिक संरचना में एक युग-युगीन संरचना की तरह मौजूद है। अत मिथक एक दोहरी संरचना है – ऐतिहासिक और इतिहास-निरपेक्ष। लेवि-स्ट्रॉस ने मिथकीय संरचना में ऐसी विशेषता पाई जो यह दर्शाती है कि विरोधी सम्बन्ध सम-रूप होने के साथ-साथ आत्म-विरोधी भी होते हैं। 'ईडिपस' इसीलिए एक प्रकार की तार्किक युक्ति है। ईडिपस अपने पिता की हत्या कर देता है, जो नातेदारी का अवमूल्यन है। वह अपनी माता योकास्टा से विवाह कर लेता है, यह नातेदारी का अधिमूल्यन है। इन दोनों ही परिस्थितियों में ईडिपस के सामने करने या नहीं करने का विकल्प है। ईडिपस कथा में यह एक सार्थक 'युग्मक विरोध' है। लेवि स्ट्रॉस ने मिथक का प्रयोजन विरोध को समाप्त करने के लिए एक तार्किक प्रारूप प्रदान करना माना है।

5.1.4. संरचनावाद की प्रमुख अवधारणाएँ

किसी भी साहित्यिक सिद्धान्त को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसके इतिहास के साथ-साथ उसके द्वारा प्रस्तुत सैद्धान्तिक निष्पत्तियों का ज्ञान भी अनिवार्य होता है। आगे अब हम 'संरचनावाद' के विचारकों द्वारा प्रस्तुत मुख्य अवधारणाओं का विवेचन करेंगे।

5.1.4.1. 'बाइनरि ऑपोज़िशन' (युग्मक विरोध)

संरचनावाद की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा 'बाइनरि ऑपोज़िशन' (युग्मक विरोध) की अवधारणा है। इसके अन्तर्गत मनुष्य की भाषा, ज्ञान और विचार के क्रिया-व्यापारों को युग्म-विरुद्धों के रूप में समझा गया है।

बाइनरि अर्थात् दोहरा या युग्म् इसका मतलब 'बाइनरि ऑपोज़िशन' ऐसे युग्म को इंगित करता है जिसमें दो शब्द या प्रत्यय परस्पर विरोधी स्थिति में होते हैं। यह दो विशेष शब्दों या संकल्पनाओं के बीच अन्तर्विरोध का द्योतक है। संरचनावाद के अनुसार मानवीय भाषा और विमर्श 'युग्मक विरोध' की संरचना के रूप में होते हैं। इन विरोधों में सदैव एक पदानुक्रम भी होता है। सॉस्सुर के अनुसार युग्मक विरोध के माध्यम से भाषा की विभिन्न इकाइयाँ अर्थ या मूल्य प्राप्त करती हैं। भाषा के सन्दर्भ में मूल्य का तात्पर्य होता है समाज में शब्दों या चीज़ों का 'स्वीकृत अर्थ'।

युग्मकता आदिकाल से मनुष्य के चिन्तन में विद्यमान रही है। विश्व की घटनाओं और क्रियाओं तथा मानव-जीवन की विविधतापूर्ण गतिविधियों को समझने की दृष्टि से 'युग्मक विरोध' का आधार लिया जाता रहा है। व्यष्टि-समष्टि, लौकिक-अलौकिक, जीवन-मृत्यु, हार-जीत, सार-आभास जैसे असंख्य 'युग्मक विरोध' हमारे अवबोध की आधारशिला रहे हैं। कोई एक विरोध दूसरे विरोध पर भारी पड़ता है। इनका वर्गीकरण समस्त भ्रामक क्रमबद्धता और सतही अर्थवत्ता के बावजूद सदैव मूल्य आधारित प्रतिमानों से निर्धारित होता है। परस्पर असमान विचारों और चीज़ों में मूल्य आधारित तुलना होती है। बाइनरि कूट की तरह प्रत्येक इकाई अन्योन्याश्रित रूप से दूसरी इकाई के साथ तुलनात्मक आधार पर परिभाषित की जाती है। एक संकेत का अर्थ उसके प्रसंग और विशेष समूह से उसकी सम्बद्धता के आधार पर ग्रहण किया जाता है। हम 'बुरे' को समझे बिना 'अच्छे' की कल्पना नहीं कर सकते। वाक्य-विन्यास या शब्द-क्रम बदलने पर अर्थ भी बदल जाता है अर्थात् भाषा में अर्थ भाषा-व्यवस्था पर निर्भर होता है। व्यवस्था बदल जाने पर अर्थ केवल बदलता ही नहीं, बल्कि अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। यदि 'बीरबल अकबर का दरबारी था' में एक शब्द का क्रम बदल दिया जाय कि 'अकबर बीरबल का दरबारी था' तो न केवल वाक्य का अर्थ बदलता है, बल्कि हमारा इतिहास-ज्ञान भी ख़तरे में पड़ जाता है।

रोमन याकॉब्सन ने ध्वनि की लघुतम इकाई के रूप में 'स्वनिम' की पहचान करते हुए बताया है कि हम सचेत रूप से असंख्य 'युग्मक विरोधों' के प्रयोग द्वारा अन्यथा एक जैसी ध्वनियों को अलग-अलग रूपों में जान पाते हैं। अत: 'युग्मक विरोध' चीज़ों में अन्तर को पहचानने में हमारी सहायता करते हैं।

5.1.4.2 . 'लाँग' (भाषा) और 'परोल' (वाक्)

सॉस्सुर के अनुसार व्यक्तिगत वाक्-क्रियाएँ इतनी अधिक और अलग-अलग हैं कि सभी का अध्ययन कर पाना एक असम्भव कार्य है। लेकिन समय-विशेष में मौजूद मानव अभिव्यक्ति की व्यवस्था का अध्ययन किया जा सकता है और भाषावैज्ञानिकों को यही करना चाहिए। सॉस्सुर भाषा के प्रकार्य को समझने के लिए भाषा को दो प्रकार से देखता है – एक भाषिक व्यवस्था और दूसरा भाषिक व्यवहार। वह भाषिक व्यवस्था को 'लाँग' (भाषा) तथा भाषिक व्यवहार को 'परोल' (वाक्) कहता है। परोल कोई भी अर्थपूर्ण लिखित या उच्चरित उक्ति होती है। 'लाँग' विभिन्न तत्त्वों की एक अव्यक्त व्यवस्था है जिसमें भेद है, विरोध है तथा संयोजन के नियम हैं, जिससे एक भाषायी समूह में वक्ता किसी 'परोल' को अभिव्यक्त कर पाता है और श्रोता उसे समझ पाता है। भाषा वैज्ञानिक का मुख्य कार्य समाज में अन्तर्निहित भाषा-व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करना होता है।

भाषा के अध्ययन को 'परोल' (वाक्) से 'लाँग' (भाषा) के रूप में समझने का कार्य सॉस्सुर का आधुनिक भाषाविज्ञान और संरचनावाद के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान है।

5.1.4.3. 'डायक्रोनिक' (ऐतिहासिक) और 'सिंक्रोनिक' (समकालिक)

अमेरिकी व्यवहारवाद के पुरोधा सी.एस. पीयर्स (1839-1914) ने संकेतों का पारिभाषिक भेद प्रस्तुत किया है। उसने तीन प्रकार के संकेतों का उल्लेख किया है – आइकॉन : अनुप्रतीक (समरूप; जैसे कोई चित्र 'चित्र खिंचवाने वाले' से मिलता है), इंडेक्स : प्रतिस्थानिक और कारणगत (जैसे धुंआ आग का प्रतिस्थानिक है, आग के कारण को बताता है) तथा सिंबल : पारम्परिक चिह्न (जैसा सॉस्सुर ने इसे समझा)। केवल तीसरे प्रकार के संकेत में 'संकेतक' और 'संकेतित' में सम्बन्ध अनिश्चयात्मक होता है।

सॉस्सुर के भाषाविज्ञान के प्रभाव ने पीयर्स के विभेदों को सीमित कर दिया तथा सॉस्सुर ने संकेतों द्वारा धारित अर्थ के लिए 'मूल्य' का प्रत्यय प्रस्तुत किया। इसे उसने आर्थिक जगत् की शब्दावली से समझाया : किसी भी वस्तु या मुद्रा के नोट या सिक्के के मूल्य का निर्धारण इसके अन्तर्निहित गुणों के आधार पर नहीं किया जाता, बल्कि उसके बदले में क्या मिल सकता है, इस आधार पर किया जाता है। उसने एक संरचना में दो तत्त्वों के बीच विद्यमान सम्बन्धों (सिंक्रोनिक) तथा उसी संरचना में एक ही तत्त्व में और पूर्व या भावी संरचना में वैसे ही तत्त्वों के बीच के सम्बन्धों (डायक्रोनिक) पर ज़ोर दिया। ये दोनों 'लाँग' के पक्ष हैं, जो कि अपने आन्तरिक सम्बन्धों में सुव्यवस्थित है। सॉस्सुर का तर्क है कि संरचना के किसी भी अवयव के प्रकार्यों को केवल तभी समझा जा सकता है जब पूरी संरचना को समग्र रूप से समझ लिया जाए। भाषा के प्रयोक्ताओं के लिए केवल भाषा की 'सिंक्रोनिक' अवस्था ही प्रासंगिक है। भाषा के परिवर्तन या उसकी उत्पत्ति के प्रश्न उन सम्बन्धों के विश्लेषण को अस्पष्ट बना देते हैं, जिनमें यह अवस्था पाई जाती है।

5.1.4.4. 'सिग्निफ़ायर' (संकेतक) और 'सिग्निफ़ाइड' (संकेतित)

'लाँग' के अध्ययन के अन्तर्गत ही सॉस्सुर ने अपना यह विचार भी सामने रखा कि भाषा 'संकेतों' की व्यवस्था या 'संकेत-तंत्र' है। भाषा एक संरचना है जो संकेतों की इकाइयों से निर्मित हुई है। प्रत्येक संकेत भी एक अन्य रचना है जिसका निर्माण एक 'संकेतित' (सिग्निफ़ाइड) और 'संकेतक' (सिग्निफ़ायर) से होता है। 'संकेतक' वह स्वर है जिसका उच्चारण हम बोलते समय करते हैं या वह संकेत है जो हम लिखते समय बनाते हैं। 'नमक' शब्द में हिन्दी भाषा के तीन अक्षरों को लिखते समय हम जो आकृति बनाते हैं या बोलते समय जिस ध्वनि का उच्चारण करते हैं वह 'संकेतक' है, जो हिन्दी समझने वाले प्रत्येक व्यक्ति में खाद्य पदार्थ नमक अर्थात् 'संकेतित' का बोध पैदा करता है। सॉस्सुर की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसने बताया कि 'संकेतित' (सिग्निफ़ाइड) और 'संकेतक' (सिग्निफ़ायर) के बीच का सम्बन्ध पूरी तरह से अनिश्चयात्मक और मनमाना होता है। उसके अनुसार संकेतों की किसी विशेष व्यवस्था का विशेष अर्थ क्यों होता है यह नहीं बताया जा सकता, क्योंकि उन संकेतों में कोई विशेष अर्थ होता ही नहीं है। हम उनकी उस व्यवस्था के अर्थ की सांस्कृतिक या ऐतिहासिक परिपाटी के

आधार पर ही उसका अर्थ जान पाते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक विशेष भाषायी समुदाय उन 'संकेतों' और व्यक्ति, वस्तु, घटना, स्थान आदि के रूप में उनके 'अर्थ' के बीच सम्बन्ध का लगातार उसी रूप में प्रयोग करता है। सॉस्सुर कहता है कि 'पूर्ण संकेत' (संकेतक और संकेतित) और जिसका वह अर्थ प्रकट करता है (खाद्य पदार्थ नमक) अर्थात् 'संदर्भित' के मध्य सम्बन्ध भी अनिश्चयात्मक और मनमाना है। इस प्रकार सॉस्सुर दो मुख्य अनिश्चयात्मक सम्बन्धों की व्याख्या करता है – पहला, 'संकेतक' और 'संकेतित' के मध्य तथा दूसरा 'संकेत' और 'संदर्भित' के मध्य।

इस सन्दर्भ में सॉस्सुर तीसरे स्तर की एक अन्य अनिश्चयात्मकता की ओर हमारा ध्यान दिलाता है। वह है 'संकेतित' या प्रत्यय के स्तर पर स्वयं 'संकेत' का अनिश्चयात्मक स्वरूप। उसका कहना है कि अलग-अलग भाषाएँ न केवल अलग-अलग 'संकेतकों' का प्रयोग करती हैं , बल्कि गोचर जगत् का अलग-अलग ढंग से विभाजन भी करती हैं अर्थात् वे अलग-अलग 'संकेतित' (प्रत्यय) का प्रयोग भी करती है। गोचर जगत् को विभाजित करने का अर्थ है कि हमें जो एन्द्रिय प्रतीति होती है उसे पृथक् और उपयोगी श्रेणियों में विभाजित कर देना। ऐसा करने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है क्योंकि संसार में स्वतंत्र रूप में पाए जाने वाले संकेतितों या प्रत्ययों की ऐसी कोई सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध व्यवस्था नहीं है जिसे भाषा नाम देती रहे। विभाजित करने और प्रकट करने की प्रक्रिया के अन्तर्गत ही भाषा इन गोचर श्रेणियों को अलग और स्वतंत्र रूप प्रदान करती है। सॉस्सुर याद दिलाता है कि यदि शब्द पहले से मौजूद सत्ताओं अर्थात् 'संकेतित' के लिए स्थिर होते, तो उन सभी के अर्थ-प्रतिपादक सभी भाषाओं में एक समान होते, लेकिन ऐसा होता नहीं है। पुन:, सॉस्सुर के अनुसार यदि 'संकेत' के 'संकेतक' और 'संकेतित' का सम्बन्ध स्वतन्त्रता का सम्बन्ध होता तो 'वृक्ष' को सभी भाषाओं में 'वृक्ष' ही कहा जाता और सब जगह एक ही भाषा का व्यवहार होता, जबकि ऐसा है नहीं।

सॉस्सुर द्वारा परिकल्पित 'संकेत विज्ञान' को उसकी मृत्यु के चालीस वर्षों बाद नए वैचारिक आधार प्राप्त हुए। 'संकेत विज्ञान' 'संरचनावाद' का ही दूसरा अभिधान है। संरचनावाद की व्यापकता और लोकप्रियता के कारण प्रसिद्ध चिन्तक फ्रेड्रिक जैमसन ने कहा है कि 'संरचनावाद' भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर सब कुछ पर पुनर्विचार करने का प्रयास है। जब हम सांस्कृतिक कलाकृति या सामाजिक घटना का अध्ययन करते हैं तब पाते हैं कि एक भाषिक संकेत की तरह इसे परिभाषित करने वाली विशेषताएँ वही हैं जो इसे दूसरी चीज़ों से अलग करती हैं और इसे संरचना के भीतर सार्थक बनाती हैं।

5.1.5. साहित्यिक संरचनावाद

सॉस्सुर के भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त में भाषा को वास्तविक दुनिया से विच्छिन्न और अपने ही नियमों से संचालित एक आत्म-निर्भर व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ संरचनावादी आलोचकों ने इन्हीं सैद्धान्तिक अवधारणाओं के आधार पर साहित्य को भाषा की तरह ही समझने के प्रयास किए हैं। इन आलोचकों के अनुसार साहित्य एक आत्म-निर्भर व्यवस्था है जो अपने गठन की इकाइयों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार

पर संचालित होती है, इसका वस्तुनिष्ठ यथार्थ से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है। साहित्यिक संरचनावाद का प्रस्थान-बिन्दु यही है।

संरचनावाद के अनुसार कला के सभी रूप – साहित्य, प्रदर्शनकारी कलाएँ, संगीत, नाट्य, सिनेमा, लोक कलाएँ आदि – सौन्दर्यशास्त्रीय संकेतों से ही गठित हैं, लेकिन इन सब में विषयवस्तु, संकेतीकरण के ढंग और अभिव्यक्ति के सामाजिक माध्यमों का बहुत अन्तर है। चूँकि भाषा, साहित्य और कलाएँ मानव-संस्कृति की सामान्य संरचना के अन्तर्गत विशेष संरचनाएँ हैं, इसलिए इनके संकेतनिष्ठ अध्ययन के लिए प्रत्येक संरचना हेतु विशेष और उसके उपयुक्त विधि और प्रारूप की आवश्यकता होती है।

भाषा के रूप में साहित्य की विवेचना करना एक जटिल कार्य है। साहित्यिक संरचनावाद भाषा विज्ञान से अपने उपकरण और प्रविधियाँ लेता है। याकॉब्सन का विचार है कि भाषिकी एक अनुसंधान प्रक्रिया प्रदान करता है जिसे साहित्य की भाषा पर लागू करके उसकी साहित्यिक संरचना प्रकट की जा सकती है। भाषिकी किसी रचना की उस संरचना का पता लगा सकती है जिससे उस रचना को साहित्यिक मूल्य प्राप्त होता है। भाषा के साहित्यिक प्रयोग में चीज़ों को व्याकरण और ध्वनिशास्त्र के नियमों के अनुसार चुनकर क्रमबद्ध ढंग से रखा जाता है। भाषिक विश्लेषण में सम्बन्धित चीज़ों की बारम्बारता के आधार पर निर्मित संरचना को पहचान कर उसका उद्घाटन किया जाता है। जोनाथन कुलर ने भाषाविज्ञान की उन तीन प्रविधियों को रेखांकित किया है जिनसे साहित्यिक संरचनावाद अधिक प्रभावित हुआ है–

- एक वैज्ञानिक अनुशासन के रूप में भाषाविज्ञान आलोचकों को बताता है कि गहन और व्यवस्थित अध्ययन का अर्थ कार्य-कारण व्याख्याओं की खोज नहीं है, जिसमें कृति के तत्त्वों को वस्तुनिष्ठ सांस्कृतिक या वैयक्तिक तथ्यों के साथ निश्चित कार्य-कारण प्रभाव के द्वारा जोड़ दिया जाए। भाषावैज्ञानिक संरचना के तत्त्वों की तरह ही साहित्यिक रचना में भी एक तत्त्व की व्याख्या पूरे संरचना-तंत्र में उसके स्थान के आधार पर की जाती है। इसलिए संरचानावाद ऐतिहासिक और जीवनीपरक आलोचन का विरोध करता है।
- भाषा विज्ञान ने ऐसी अनेक अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं जिन्हें साहित्यिक रचनाओं के विवेचन में आसानी से लागू किया जा सकता है। इनमें सबसे प्रमुख हैं– 'संकेतक' और 'संकेतित', 'भाषा' और 'वाक्' तथा 'डायक्रोनिक' और 'सिंक्रोनिक'। इन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किसी भी रचना में अन्तर्निहित सम्बन्धों को पहचानने में किया जा सकता है।
- भाषा विज्ञान संरचनावादियों को संकेत-व्यवस्था के अध्ययन के लिए आदर्श-प्रारूप प्रदान करता है। प्रारूप के घटकों के अनुसार रचना का विवेचन एक तर्क-संगत कार्य बन जाता है।

कृति के फ़लक का विस्तार करते हुए संरचनावाद उसकी साहित्यिकता और अर्थ-गांभीर्य को बढ़ाने का दावा करता है। उसके अनुसार यदि पाठक और पाठ (टेक्स्ट) दोनों सांस्कृतिक संरचनाएँ हैं तब पाठ का अर्थ

अधिक सपष्ट हो जाता है, क्योंकि वे एक ही अर्थ-संरचना की साझेदारी करते हैं। यदि संस्कृति पाठाधारित है तो संस्कृति का साहित्य की पाठात्मकता (टेक्सचुअलिटी) के साथ सम्बन्ध अधिक नज़दीकी, प्रासंगिक और ज़रूरी बन जाता है। साहित्य विमर्शों की दुनिया में एक विमर्श है। प्रत्येक विमर्श के अर्थ, भाषा, विषयवस्तु और मुहावरों आदि के सम्बन्ध में अपने नियम होते हैं। हमें जो वास्तविक दिखाई देता है वह कूट रचित और परम्परागत होता है, जो हमें बताता है कि कला में यथार्थ कैसे प्रस्तुत होता है। हम जो पाते हैं वह यथार्थ-प्रभाव होता है, यथार्थ को दर्शाने वाले संकेत 'तटस्थ' बना दिए जाते हैं अर्थात उन्हें इस तरह बना दिया जाता है कि हम उनके माध्यम से यथार्थ का अनुभव कर सकते हैं। ये यथार्थ के नियमों के अनुसार बनाए गए लगते हैं, होते नहीं हैं। साहित्यिक सिद्धान्त की दृष्टि से संरचनावाद में आख्यान-कथाओं का विश्लेषण उनमें अन्तर्निहित स्थिर संरचना की तरह किया गया है। संरचनावादी दृष्टि से विश्लेषण करने वाला आलोचक यह घोषणा कर सकता है कि भगवानदास मोरवाल ने 'काला पहाड़' उपन्यास में कुछ भी नया नहीं लिखा है क्योंकि इसकी संरचना भी वैसी है जैसी प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' की है।

संरचनावाद ने साहित्य के सम्बन्ध में हमारी बहुत प्राचीन और प्रिय मान्यताओं को चुनौती दी। यह माना जाता रहा है कि साहित्यिक रचना लेखक के भावों और विचारों का मूर्त रूप होती है। साहित्यिक रचना को लेखक के मन की उपज कहा जाता है। लेखन या रचना ही वह स्थान है जहाँ हम लेखक के मानस जगत् में प्रवेश करते हैं और उसके साथ एक मानवीय सम्बन्ध स्थापित करते हैं। साहित्य के बारे में माना जाता है कि वह जीवन के अनछुए पहलुओं को अभिव्यक्त करता है और मानव-समाज की नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह चीज़ों को उनके यथार्थ रूप में एक निश्चित उद्देश्य के साथ प्रस्तुत करता है। संरचनावाद इस लोकप्रिय साहित्यिक समझ का खण्डन करता है। रोलाँ बार्थ ने तर्क प्रस्तुत किया है कि लेखक में इतनी ही क्षमता होती है कि वह पूर्व उपलब्ध रचनाओं को आपस में मिला ले, उनका पुनर्संयोजन करे और फिर से प्रस्तुत कर दे। लेखक रचना का उपयोग किसी भी रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करने या कुछ अद्भुत कहने के लिए नहीं कर सकता, वह 'भाषा और संस्कृति के पूर्व-लिखित महाकोश' का केवल उपयोग कर सकता है। संरचनावादी आलोचक साहित्यिक आलोचना के उन सभी रूपों का विरोध करते हैं जिनमें मानवीय सत्ता को साहित्यिक अर्थ का जनक और स्रोत माना जाता है। यहाँ तक कि वे इसे 'मानव-विरोधी' प्रकार्य मानते हैं।

संरचनावादी साहित्य-समीक्षा का तर्क है कि साहित्यिक पाठ की विलक्षणता उसकी संरचना में निहित है, न कि उसके विशेष पात्रों के चरित्र-चित्रण या उसकी अभिव्यक्ति के तेवर या कलेवर में। साहित्यिक संरचनावादी व्लादिमिर प्रॉप के सूत्रों और लेवि-स्ट्रॉस के सूत्रों के आधार पर कहानी और मिथक के मूल तत्त्वों की पहचान करते हैं।

5.1.6. आख्यान का काव्यशास्त्र

आख्यान के संरचनात्मक अध्ययन में व्लादिमिर प्रॉप और क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। व्लादिमिर प्रॉप ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मॉर्फ़ोलॉजी ऑफ फ़ोकटेल्स' (1928) में आख्यान की

व्याकरण का नक्शा प्रस्तुत किया है। इसका आधार लोक कथाओं की संरचना का अध्ययन है। रूसी लोककथाओं के अन्तरंग के उदघाटन में प्रॉप ने उनकी संरचना को आधार बनाया। उसने लोक कथाओं के ऐतिहासिक और सामाजिक सन्दर्भों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उसके अनुसार दो एकदम अलग कथाओं की समान घटनाओं को एक ही प्रकार से विश्लेषित किया जा सकता है और उन्हें एक ही वर्ग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। प्रॉप ने ऐसे इकत्तीस सम्भाव्य प्रकार्यों का उल्लेख किया है जिन्हें कथा के पात्रों, परिवेश, संघर्ष और देश-काल की भिन्नता के बावजूद सभी कथाओं पर लागू किया जा सकता है। प्रॉप ने पात्रों के वर्गीकरण में अधिक समय लगाने की आवश्यकता महसूस नहीं की, क्योंकि उसके अनुसार ये तो केवल क्रियाओं के पात्र और विधियाँ हैं जिनसे कथा के प्रकार्यों को जोड़ा गया है। उसने सात प्रकार के पात्र बताए हैं। प्रॉप ने कथा के वाक्यों के विश्लेषण के माध्यम से उनके आदि रूप तक पहुँचने का प्रायास किया है। उसने यह सिद्ध किया कि कथा के चरित्रों और उनके प्रकार्यों के आधार पर कथा की आन्तरिक संरचना को समझा जा सकता है और ऐसे सामान्य बिन्दु या मूल तत्त्व खोजे जा सकते हैं जिनके आधार पर दुनिया भर की लोक कथाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

क्लॉद लेवि-स्ट्रॉस ने भी लोक कथाओं और मिथकों को अपने अध्ययन का आधार बनाया, लेकिन वह मिथकों के रूप के स्थान पर उनके सांस्कृतिक मूल को खोजने में प्रवृत्त हुआ। वह मिथकों के विश्लेषण को मनुष्य के मस्तिष्क के विश्लेषण तक ले गया। वह सर्वप्रथम मिथकीय आख्यान को एक-एक वाक्य में सीमित छोटी-छोटी इकाइयों (मिथीम्स) में विभाजित करता है। यह विभाजन कथा-पात्रों की क्रियाओं के आधार पर न होकर उनके सम्बन्धों के आधार पर होता है। ये मिथिम ही मिथक का कूट होते हैं, इनके खुलने से ही मिथकीय आख्यान का अर्थ भी खुलता है। यह बहुत जटिल कार्य है, लेकिन लेवि-स्ट्रॉस ने मानव-जीवन की सांस्कृतिक जड़ों की खोज में इस संरचना का महत्त्व स्थापित किया और उसकी विविधता को समझने का प्रयास किया। उसने बताया कि हम मिथक की भाषा या संस्कृति को भले ही न जानते हों, लेकिन मिथक सदैव मिथक ही रहता है और उसे मिथक के रूप में ही देखा-समझा जाता है।

5.1.7. पाठ का सारांश

संरचनावाद सांस्कृतिक गतिविधियों का अध्ययन और विश्लेषण एक विज्ञान की तरह वस्तुनिष्ठ ढंग करता है। पहले उन तत्त्वों की खोज जिनसे संरचना निर्मित हुई है और फिर समग्र संरचना के भीतर उनतत्त्वों के के परस्परिक सम्बन्धों के ताने-बाने को समझने का उपक्रम। भाषा एक संरचना है। इसके भी सम्बन्ध-सूत्रों और प्रकार्यों की एक व्यवस्था है। यह व्यवस्था कुछ संकेतों से रची-बुनी होती है। यह व्यवस्था व्यक्ति और परिवेश से जुड़ी होकर भी उससे निरपेक्ष होती है। भाषा के संकेतों में मूल्य भरे होते हैं, ये मूल्य चीज़ों में अन्तर्निहित मूयोन के द्योतक होते हैं। इन्हीं मूल्यों से हम चीज़ों और घटनाओं का अर्थ समझते हैं, मानवीय संचार सम्पन्न होता है।

संरचनावाद की साहित्यिक फलश्रुति यह है कि रचना को एक संरचना की तरह ही देखा-समझा जा सकता है। चूँकि भाषा एक संरचना है और वही हमारे यथार्थ का निर्माण करती है, इसलिए जीवन और जगत् का

हमारा अवबोध भाषा की संरचना पर निर्भर है। साहित्यिक कृति लेखक, विषय-वस्तु या ऐतिहासिक कारणों से दूर केवल अपनी संरचना में अस्तित्वमान है। कृति की संरचना अर्थात् उसकी भाषा की संरचना को समझ जाइए, कृति स्वत: समझ आ जाएगी।

5.1.8. उपयोगी सन्दर्भ

5.1.8.1. हिन्दी की पुस्तकें

1. तिवारी, डॉ॰ रामचन्द्र. (2016). भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी-आलोचना. वाराणसी. विश्वविद्यालय प्रकाशन . ISBN : 978-81-7124-764-6

2. नारंग, गोपीचन्द. (2004). संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद और प्राच्य काव्यशास्त्र . नई दिल्ली. साहित्य अकादमी. ISBN : 81-260-0798-2

3. भारद्वाज, डॉ॰ मैथिली प्रसाद. (1994). पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त. चण्डीगढ़ . हरियाणा साहित्य अकादमी.

5.1.8.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. Eagleton, Terry. (2003). Literary Theory: An Introduction, 2e. Minnesota. Blackwell Publishers Ltd. ISBN – 0-9166-1251-X

2. Habib, M. A. R. (2005) . A History of Literary Criticism: From Plato to the Present. Malden, USA. Blackwell Publishing. ISBN-13: 978-0-631-23200-1

3. Lodge, David & Wood, Nigel (ed).(2007). Modern Criticism and Theory : A Reader . New Delhi. Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. ISBN : 978-81-317-0721-0

4. Selden, Raman (ed.).(2008)The Cambridge History of Literary Criticism(Vol. 8): From Formalism to Poststructuralism. Cambridge. Cambridge University Press. ISBN - O 521 3OOI3 4

5.1.8.3. इन्टरनेट स्रोत

1. www.britannica.com/science/structuralism-anthropology

2. www.britannica.com/topic/Prague_school

3. www.newworldencyclopedia.org.entry/Prague_Linguistic_Circle

4. www.newworldencyclopedia.org.entry/Structuralism

5.1.9. अभ्यास के लिए प्रश्न

1. संरचनावाद की परिभाषा बताते हुए उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए।

2. फर्दीनांद द सॉस्सुर को संरचनावाद का जनक क्यों कहा जाता है?

3. 'मिथक' और 'मिथीम्स' में क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट कीजिए।

4. 'बाइनरि ऑपोज़िशन' की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।

5. साहित्यिक संरचनावाद पर एक निबन्ध लिखिए।

6. 'लाँग' (भाषा) और 'परोल' (वाक्) भाषा के प्रकार्य को समझने में किस प्रकार सहायक हैं ?

7. मिथकों और लोककलाओं को समझने के लिए व्लादिमिर प्रॉप क्या प्रक्रिया अपनाता है ?

8. संरचनावाद के विकास में रोमन याकॉब्सन के योगदान पर टिप्पणी कीजिए।

9. "साहित्यिक संरचनावाद अपने उपकरण और प्रविधियाँ भाषाविज्ञान से लेता है"। स्पष्ट कीजिए।

10. संरचनावाद के विकास में 'प्राग लिंग्विस्टिक सर्कल' के योगदान की चर्चा कीजिए।

❖❖❖